अध्याय -- ७

-०-

# सन्तों की दृष्टि में जीव और जगत

अध्याय --७

-०-

## सन्तों की दृष्टि में जीव और जगत्

### जीव तत्व

विश्व में कोई भी तत्व परमेश्वर की सत्ता के परे नहीं है। इस परम तत्व की दो प्रकृतियां मानी गयी हैं-- (१) अपरा प्रकृति तथा (२) परा प्रकृति। अपरा प्रकृति से तात्पर्य जड़ प्रकृति से है जो सृष्टि के मूल में स्थित है। इसी से सृष्टि का निर्माण होता है, इसे ही जगत् कहा गया है। गीता में भगवान् ने कहा है--

'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥[१]

दूसरी परा प्रकृति है। यह जीव रूपा है। जगत् जड़ है, किन्तु जीव चेतन् है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।[२]
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

'कठोपनिषद्' में जीव को छाया तथा परमेश्वर को प्रकाश रूप में स्वीकार[३] किया गया है। यथा--'गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे छाया तपौ ब्रह्मविदो वदन्ति।' जैन दर्शन में 'चैतन्य लक्षणो जीवः'[४] कहकर चैतन्य होना ही जीव है।

---

१- श्रीमद्भगवद्गीता-अध्याय४, श्लोक ६
२- ,, ,, ७, ,, ५
३- कठोपनिषद् ३।१
४- षड्दर्शन समुच्चय, कारिका ४८

का सामान्य लक्षण बतलाया गया है । बौद्ध दर्शन में जीव की कोई वास्तविक सत्ता नहीं स्वीकार की गई । इसे जल-धारा के सदृश्य कहा गया है । जिस प्रकार जल की धारा का सतत् प्रवाह होते रहने पर भी प्रत्यक्षत: कोई परिवर्तन नहीं प्रतीत होता, जब कि स्नान करते समय हमें प्रतिक्षण नवीन जल प्राप्त होता है,उसी प्रकार जीव भी जन्म-जन्मान्तर के रूप में प्रवाहमय बना रहता है[१]। सांख्य दर्शन के अनुसार जीव असंख्य हैं । ये अनादि तथा स्वतन्त्र हैं । मीमांसा दर्शन में जीव को नित्य कहा गया है । यह कभी नष्ट नहीं होता । जीवात्मा अविकार है तथा शरीर विकार है । शरीर नष्ट होता रहता है तथा जीव नवीन शरीर धारण करता रहता है ।

अद्वैत दर्शन में शंकराचार्य ने जीव और ब्रह्म को एक ही बताया है । जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है । केवल माया के आवरण के कारण ही जीव ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है किन्तु माया के हटते ही दोनों एक हो जाते हैं । वह एक है, अद्वितीय है,तथा इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ।

विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत में भी सांख्य की भांति ही जीवात्माएं असंख्य हैं,किन्तु सांख्य जहां जीवात्मा को स्वतन्त्र और अनादि मानता है, वहां द्वैताद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद अंशांशि दृष्टि से जीव तत्व और परमतत्व का सम्बन्ध स्थापित करते हैं ।

सन्त साहित्य में भी ब्रह्म और जीव को एक माना गया है । संत कबीर ने उस परमतत्व के अतिरिक्त अन्य किसी तत्व को स्वीकार ही नहीं किया है । जीवात्मा भी परम तत्व के अन्तर्गत आ जाता है । 'हरि में पिण्ड, पिण्ड में हरि है'[२] । इसीलिए कबीर ने शरीर में ही स्थित जीवात्मा के लिए

---

१- डा० प्रेमनारायण शुक्ल-- संत साहित्य,पृ०१०३

२- आदि ग्रन्थ-- राग गौड़ पद ३

कहा है कि " न तो यह मनुष्य है, न देवता है , न यह योगी है,न यती है, न अवधुत है । न इसके कोई माता है न पुत्र । न यह गृही है, न उदासी है, न राजा है न रंक है । न यह ब्राह्मण है न बढ़ई है । न यह तपस्वी है न शेख । न इसे कभी जीते देखा है न मरते । इसके मरने पर जो कोई रोता है वह अपनी मर्यादा ही खोता है ।.... कबीर कहता है, यह जीवात्मा राम (परमात्मा) का अंश है और यह उसी प्रकार नहीं मिट सकता,जिस प्रकार कागज पर स्याही का चिन्ह नहीं मिट सकता[१] ।"

कहीं-कहीं संत साहित्य में जीव और ब्रह्म में जो आधार देखने को मिलता है, वह वास्तविक और परमार्थिक नहीं,बल्कि व्यावहारिक और मायाजन्य है । विश्व में फैले हुए गगन तत्व और घट में संपुटित गगन तत्व में किसी प्रकार का अन्तर नहीं । सृष्टि प्रतिबिम्ब है और ब्रह्म बिम्ब है[२] । कुम्हार ने एक ही मिट्टी गूंध कर अनेक प्रकार के रूप संवारे हैं[३] । उस एक मिट्टी (तत्व) से अनेक रूप बनाए हैं और प्रत्येक रूप में वही ब्रह्म है[४] । पक्षी पशु में जीवात्मा है[५] । तरंग और बुदबुद जिस प्रकार जल से भिन्न नहीं हैं,उसी प्रकार जीव और जगत् उससे भिन्न नहीं है[६] ।

सन्त कबीर ने जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण व्यक्त किए हैं । सर्वप्रथम उन्होंने ब्रह्म की महत्ता स्वीकार करते हुए,जीव और ब्रह्म को एक ही माना है । दोनों अभिन्न हैं । उनका यह दृष्टिकोण शंकर वेदान्त

---

१- डा० रामकुमार वर्मा-- संत कबीर- राग-गौड-पद-५

२- जिउ प्रतिबिम्बु बिंबु कउ मिली है.... --डा०रामकुमार वर्मा-संत कबीर

३- कुम्हारै एक जु माटी गूंथी बहु बिधि बानी लाई --संत कबीर,रागु आसा १६

४- माटी एक भेख धरि नाना ता महिं ब्रह्म पसाना । ,, ,, १७पृ०१०७

५- सन्त कबीर-- रागु आसा १४,पृ०१०४

६- रविदास--आ०ग्रं,रागु आसा३

के अद्वैत-वाद से प्रभावित है। दूसरे दृष्टिकोण में उन्होंने ब्रह्म को महान अस्तित्व वाला स्वीकार करते हुए जीव को उसके सम्मुख नगण्य बतलाया है तथा ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध को अनेकानेक रूपों में व्यक्त किया है। सर्वप्रथम हम, शंकर के अद्वैत-वाद से प्रभावित कबीर की ब्रह्म और जीव की एकता के सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हैं:- जीव और ब्रह्म उसी प्रकार एक है जिस प्रकार--"जल से हिम बन जाता है तथा हिम ही पिघल कर पुन: जल रूप में परिणत हो जाता है,जो कुछ वह था पुन: वही हो गया, अब कुछ कहते नहीं बनता।[1]"

"हम सब में हैं तथा सब हममें है हमारे अतिरिक्त और दूसरा कुछ नहीं है। तीनों लोकों में हमारा विस्तार है तथा आवागमन सब हमारा ही खेल है। षट्-दर्शन हमारा ही वेश है, न तो मेरा कोई रूप है और न तो कोई चिन्ह ही। मैं सभी वस्तुओं से परे हूं। मैं ही कबीर कहलाया तथा मैंने अपने-आपको स्वत: व्यक्त किया।[2]"

"कबीरदास कहते हैं कि मैं और तुम उसी प्रकार एक ही हूं, जिस प्रकार जल में मिला हुआ जल एक हो है-- अलग नहीं किया जा सकता।[3]"

"अरे मित्र! खोजते खोजते तो कबीर ही खो गया। जब व बूंद समुद्र में मिल गई तो वह कैसे खोजी जा सकती है।[4]"

--------------

१-" पाणीं ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
 जो कुछ था सोई भया, अब कछू कहा न जाइ ।।" (कबीर ग्रं०,पृ०१३)

२- हम सब मांहि सकल हम मांही, हम थै और दूसरा नांही।
 तीनि लोक मैं हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा।
 खट दरसन कहियत हम भेखा, हमहीं अतीत रूप नहीं देखा।
 हमहीं आप कबीर कहावा, हमहीं अपनां आप लखावा ।(कबीर ग्रं०,पृ०२०१)

३- जैसे तुम तैसे हम एकै कहियत, जब आपा पर नहीं जानां।
 ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, कहै कबीर मनमांनां ।।(कबीर ग्रं०,पृ०१०७)

४- हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय।
 बूंद समानीं समद मैं, सो कत हेरी जाय ।। (कबीर ग्रन्थावली,पृ०१७)

सन्त कबीर कहते हैं कि हल्दी पीली है और चूना सफेद। राम और उनके स्नेही इस प्रकार से मिले कि दोनों ने रंग ही खो दिया[1]।

पक्षी उड़ा और उसी प्रकार खोजा नहीं जा सका, जिस प्रकार जल में मिला हुआ जल[2]।

यदि ईश्वर मरेंगे तो मैं भी मरूँगा। यदि ईश्वर नहीं मरेंगे तो मैं क्यों क मरूं? कबीर कहते हैं मैंने अपने मन को उनमें मिला दिया तथा ऐसे सुख के सागर को प्राप्त कर अमर हो गया हूँ[3]।

जल में कुंभ है तथा कुंभ में जल है, तात्पर्य यह कि कुंभ के बाहर तथा भीतर दोनों ओर जल ही जल है। कुंभ के फूट जाने पर भीतर का जल बाहर के जल से मिल गया। ज्ञानियों इस तत्व का कथन करो[4]।

इस प्रकार सन्त कबीर ने शंकर वेदान्त के दृष्टिकोण को ग्रहण कर, ब्रह्म और जीव को एक सिद्ध किया।

अब हम संत कबीर के दूसरे दृष्टिकोण पर विचार करेंगे, जिसमें उन्होंने जीव और ब्रह्म को भिन्न-भिन्न रूपों में स्वीकार किया है। ब्रह्म को एक

---

१- कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
राम सनेही यूं मिले, दुन्यूं बरन गंवाइ ॥
(कबीर ग्रन्थावली, पृ०५८)

२- उड़्यां बिहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलहिं समाना।
(कबीर ग्रन्थावली, पृ०६०)

३- हरि मरि हैं तौ हमहुं मरि हैं, हरि न मरै हम काहे कूं मरि हैं।
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ॥
(कबीर ग्रन्थावली, पृ०१०२)

४- जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समानां, यहु तत कथौ गियानीं ॥
(कबीर ग्रन्थावली, पृ०१०३)

महान् सत्ता के रूप में मानते हुए उसके सम्मुख जीव को निम्न कोटि का माना है। उनके सम्बन्ध इस प्रकार से निरूपित किये गये हैं:-

पिता-पुत्र के रूप में ब्रह्म और जीव

(१) पूत पियारो पिता कौं, गौहनि लागा धाइ।
लौभ मिठाई हाथि दै, आपण गया भुलाइ ॥[१]

(२) प्रियतम और कुमारी कन्या के रूप में ब्रह्म और जीव

जब लगि पीव परचा नहीं, कन्या कुंवारी जाणि।
हथलेवा होसै लिया, मुसकल पड़ी पिछांणि ॥[२]

(३) प्रियतम और विरहणी के सम्बन्ध में ब्रह्म और जीव

विरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलेंगे आइ ॥[३]

(४) प्रियतम और बहुरिया के रूप में ब्रह्म और जीव

हरि मोरा पीव मैं राम की बहुरिया।
राम बड़े मैं तनकी लहुरिया ॥[४]

(५) पुरुष और नारी के रूप में ब्रह्म और जीव

तुमहिं पुरुष मैं नारि तुम्हारी।
तोहरि चाल पाहनहूं ते भारी ॥[५]

---

१- कबीर ग्रन्थावली, साखी ३१, पृ० १०
२- ,, ,, २४, पृ० ४७
३- ,, ,, ५ पृ० ८
४- कबीर बीजक, पृ० ४२
५- ,, ,, पृ० ४२

(६) भरतार और दुलहिन के रूप में ब्रह्म और जीव

दुलहिनी गावहुं मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भतार[१] ।।

(७) प्राणपति और सुन्दरी के रूप में ब्रह्म और जीव

प्राणपति जागै सुन्दरी क्यों सोवै
उठि आतुर गहि पांइ[२] ।

(८) लाल और सजनी के रूप में ब्रह्म और जीव

सजनी रजनी घटती जाइ ।
पल पल छीजै अवधि दिन आवै, अपनौ लाल मनाइ[३] ।।

(लाल- परमात्मा), सजनी-जीवात्मा ।

(९) जल और मछरी के रूप में ब्रह्म और जीव

मछरी अग्नि मांहि सुख पायो,
जल में बहुत हुती बेहाल[४] ।।

(मछरी-- जीवात्मा।अग्नि-माया कृत सांसारिक रूप।जल-परमात्मा)

कबीर के अतिरिक्त अन्य संत कवियों (नानक,दादू, सुन्दरदास आदि) ने भी जीव और ब्रह्म को अभिन्न रूप में ही स्वीकार किया है । गुरुनानक देव ने आत्मा और परमात्मा की स्वयानुभूति कर भेद-भाव को दूर करने का बार-बार उपदेश दिया है ।

---

१- डा० रामकुमार वर्मा-- कबीर का रहस्यवाद,पृ०११९
२- दादू दयाल की बानी,भाग२,पृ०५८
३- ,, ,, पृ०५८
४- सुन्दर विलास,पृ०

दादूदयाल नित्यानन्द में इतने लीन हो जाते हैं कि एकमात्र परमतत्व के अतिरिक्त उन्हें और कुछ दिखलाई ही नहीं पड़ता । वे कह उठते हैं-

सदा लीन आनन्द में, सहज रूप सब ठौर ।
दादू देखत एक को, दूजा नाहीं और ।।'

ब्रह्म और जीव की अद्वैत परक इस अभिन्न स्थिति की व्यंजना करते हुए सुन्दरदास जी ने भी कहा है--

'एकहि ब्रह्म रह्यौ भरिपूरि तौ, दूसर कौन बतावनि हारौ ।
जौ कोउ जीव कहै जु प्रमान तौ, जीव कहा कछु ब्रह्म तैं न्यारौ ।।
जौ कहै जीव भयौ जगदीस तै, तौ रवि माहिं कहाँ कौ अंधारौ ।
सुन्दर मौन गही यह जानि कै, कौन हुं भाँति न होत निधारौ ।।'[१]

वह एक ही ब्रह्म घट की सीमा के अनुकूल लघु-वृहद् रूप में सर्वत्र विद्यमान है तथा--

'एकहि कूप के नीर तैं सींचत, ईंख अफीमहिं अम्ब अनारा ।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि, मिष्ट कटुक खटा अरु खारा ।।
त्यौंहि उपाधि संयोग तै आतम, दीसत आहि मिल्यौ सौ विकारा ।
काढ़ि लिए जु विचार विवस्वत, सुन्दर शुद्ध स्वरूप है न्यारा ।।'[२]

इस प्रकार परवर्ती संतकवियों ने भी कबीर की भाँति ही जीव और ब्रह्म को अभिन्न रूप में देखने का प्रयत्न किया है ।

---

१- सन्त काव्य, पृ०३६१
२- ,, पृ० ३६०

## जगत

जगत की उत्पत्ति और स्थिति सम्बन्धी जिज्ञासायें प्राचीनकाल से ही चिन्तनशील मानव मस्तिष्क में उठती रही हैं। ऋग्वेद में 'स हि क्रतुः, स मर्यः स साधुः'[१] कहकर एकमात्र ब्रह्म को ही जगत् का स्रष्टा, पालक और हर्ता कहा गया है। वह ब्रह्म सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है, सभी जड़-चेतन पदार्थ के बाहर और भीतर स्थित है। वही सब की आत्मा है[२]। सम्पूर्ण जगत् उस ब्रह्म की प्रतिच्छाया मात्र है[३]। उस एक ब्रह्म से ही यह अनन्त जगत् उत्पन्न हुआ है तथा अनन्त जगत् में एक ही ब्रह्म व्याप्त है और विनष्ट होकर यह जगत् उसी में लीन हो जाता है[४]।

सृष्टि के मूलभूत तत्वान्वेषण की प्रक्रिया में इस अनेकान्त विश्व की उलझनमयी पहेलियों का तीन कोटियों में अध्ययन किया गया है। इस सृष्टि का मूल तत्व क्या है? इसका कर्ता कौन है, तथा किस क्रम और प्रकार से इसकी रचना हुई है? उपनिषदों में इन तीनों प्रश्नों पर विचार किया गया है। उपनिषदों में जल(बृहदा०), वायु(छान्दोग्य०), अग्नि(कठ०), आकाश(छान्दोग्य), असत् (तैत्तिरीय), सत्(छान्दोग्य) इस सृष्टि के मूल तत्व माने गए हैं[५]। इस सृष्टि का कर्ता एकमात्र परब्रह्म ही है। सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास-क्रम के सम्बन्ध में प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि सृष्टि उत्पन्न करने की कामना प्रजापति में हुई। उसने तप किया और एक रति और प्राण के युग्म (मिथुन) की सृष्टि की[६]।

---

१- ऋग्वेद--१।७७।३।
२- तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्य बाह्यतः --शु०यजुर्वेद संहिता४०।५
३- तस्य भासा सर्वमिदं विभाति -- श्वेताश्वतर उपनिषद् ६।१४
४- एक में अनन्त, अनन्त में एकै, एकै अनन्त उपाया।
अंतरि एक तौ परचा हुवा, अनन्त एक में समाया ।।-गोरखबानी, पृ०१०३
५- मध्यकालीन सन्त साहित्य--डा० रामखेलावन पाण्डेय, पृ०२६६
६- प्रश्नोपनिषद् १।३-१३

तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार भी उसने सृष्टि करने की कामना की, तप किया और अस्तित्व-मय सम्पूर्ण वस्तुओं की रचना की[1]। सृष्टि-क्रम का व्यवस्थित विवरण ऐतरेयोपनिषद् में प्राप्त होता है। इसके अनुसार सर्वप्रथम एकमात्र आत्मा की स्थिति थी। उसमें लोक-सृजन की कामना जगी और उसने चार लोकों की सृष्टि की। आदि आत्मा और सृष्टि के मध्यवर्ती, पुरुष की सृष्टि कर प्राण-वायु दिया। परमात्म-तत्व से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी संभूत हुई[2]।

## सन्त कवियों का जगत-तत्व (सृष्टि प्रक्रिया)

सन्त सम्प्रदाय में परब्रह्म से ही सृष्टि के सम्पूर्ण सजीव तथा निर्जीव पदार्थ उद्भूत हुए हैं[3]। निर्गुण निराकार ज्योति-रूप परब्रह्म से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। संसार उत्पन्न होता है, विकसित होता है और विकसित होकर उसी ब्रह्म में लीन हो जाता है[4]। बीजक की प्रारम्भिक तीन रमैनियों में सन्त कबीर व ने सृष्टि-तत्व और प्रक्रिया पर विचार किया है तथा अन्य स्थलों पर भी इन संकेतों की पुष्टि की है। इन्हीं संकेतों के आधार पर सन्तों के सृष्टि-तत्व सम्बन्धी विचारों का क्रम स्थापित किया जा सकता है। इन रमैनियों में चेतन-पुरुष और जड़ प्रकृति ये दो पदार्थ अनादि माने गए हैं। देदीप्यमान् उस चैतन्य से ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व एकमात्र आत्मा ही था, तदनन्तर माया में चेतन के प्रतिबिम्ब से ईश्वर की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार ईश्वरेच्छा से ही प्रथम त्रिगुण

---

१- तैत्तिरीय उपनिषद् २।६

२- ऐतरेयोपनिषद् २।१

३- जोति की जाति जाति की जोती, तित लागे कंचुआ फल मोती।
--सं०क०, राग गउड़ी६, पृ०११

४- उपजै निपजै निपजि समाई, नैनह देखत इहु जगु जाई ।।

प्रधान ब्रह्मा, विष्णु, और महेश की उत्पत्ति हुई । जिनका कार्य क्रमानुसार विश्व का सर्जन, पालन और संहार करना है । इस मायावी ईश्वर ने ही शरीर का निर्माण कर उसमें जीव रूप से प्रवेश किया ।

सन्त कबीर ने जगत सत्ता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसे नश्वर, मिथ्या एवं स्वप्नवत् कहा है । 'ज्यों जल बुंद तैसा संसार, उपजत बिनसत लगै न बार ।।'[1] तथा --

'समझ विचार जीव जब देखा, यह संसार सुपिन कर लेखा'[2] ।।'

कबीर, आचार्य शंकर के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' तथा 'सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या' को स्वीकार करते हुए जगत् का मूल अधिष्ठान परब्रह्म को ही मानते हैं । उन्होंने--

'जो तुम देखो सो यह नाहीं
यह पद अगम अगोचर माहीं'[3] ।'

कहकर यह स्पष्ट कर दिया है कि दिखलाई पड़ने वाला यह नाम-रूपात्मक संसार सत्य नहीं है-- मिथ्या है, तथा जिसमें इसकी स्थिति है वह तत्व अगम और अगोचर है ।

यह अगम और अगोचर तत्व, सृष्टि के पूर्व भी (जब किसी वस्तु की सत्ता न थी) विद्यमान था । किन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि वह नाम-रूपादि से परे है--

'जब नहीं होते पवन न पानी । तब नहीं होती सृष्टि उपानी ।।
जब नहीं होते प्यराउ न वासा। तब नहीं होते धरनि अकासा ।।

---

१- कबीर ग्रन्थावली, पृ०१२१
२- ,, पृ०२२६
३- ,, पृ०१३३

जब नहीं होते गरभ न मुला । तब नहीं होते कली न फुला ।।
जब नहीं होते सबद न स्वाद । तब नहीं होते विया न वाद ।।
जब नहीं होते गुरू न चेला । गम अगमै पंथ अकेला ।।
अविगत की गति क्या कहूं, जस कर गांव न नांव ।
गुन बिहून का पेखिये, का का धरिये नांव ।।[1]

कबीर का यह सृष्टियोत्पत्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के आस्तिक वर्णनों से प्रभावित है, किन्तु बौद्धों के शून्यवाद से भिन्न है ।

कबीर ने जगत् को सेमर के फूल के सदृश्य कहा है--

यौ ऐसा संसार है, जैसा सैंवल फुल ।
दिन दस के त्यौहार को, झूंठे रंगि न भुल ।।[2]

तथा इसे 'विष की वेल' भी कहा है । तात्पर्य यह कि जिस प्रकार 'सेमर का फूल' और 'विष की वेल' सत्य होते हुए भी क्रमशः सार-हीन और संहारक हैं, उसी प्रकार यह जगत् भी है । उन्होंने इसे बिना धड़ का वृक्ष भी कहा है, जो बिना फूले ही फलने लगता है । इस वृक्ष में शाखाएं और पत्तियां नहीं हैं फिर भी आठों दिशाओं में यह फैला हुआ है --

'तरवर एक पेड़-बिन ठाढ़ा । बिन फूला फल लागा ।
साखा पत्र कछू नहीं वाकै । अष्ट गगन मुख बागा ।।[3]

इस जगत् की बड़ी विचित्र दशा है । इसकी विचित्रता पर कबीर ने कहा है--

'कबीर यहु जग कुछ नहीं, षिन षारा षिन मीठ ।
काल्हि जु बैठा माड़ियां, आज मसांणा दीठ ।।[4]

---

१- कबीर ग्रन्थावली, पृ०२३६
२- ,, पृ०२१
३- ,, पृ० पद १६५
४- ,, 'काल को अंग १५

तात्पर्य यह कि कबीर ने जगत् की क्षणभंगुरता और निस्सारता को स्वीकार करते हुए एकमात्र ब्रह्म को ही सत्य कहा है । अन्य परवर्ती सन्त कवियों ने भी इसी मार्ग का अनुगमन किया है ।

गुरु नानक ने सृष्टि-क्रम पर विचार करते हुए कहा है कि सर्व प्रथम जब कुछ भी नहीं था, उस समय केवल सत्य रूप परमात्मा था । उसी की आज्ञा में सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन होता है[१] । उसी की इच्छा से आदि में शून्य(आकाश),शून्य से पवन तथा पवन से जल उत्पन्न हुआ । शून्य से ही ॐकार,ओंकार एवं चारों अग्नियां प्रकट हुईं । सृष्टि के पूर्व-- सुख-दुख से अतीत अदृष्ट,अलिप्त और अलेख एकमात्र ब्रह्म ही घट-घट में व्याप्त था ।

दादूदयाल ने सृष्टि-तत्व का निरूपण निम्न प्रकार से किया है--

पहली कीया आप थैं, उतपती ओंकार ।
ओंकार थैं ऊपजे, पंच तत्त आकार ॥
पंच तत्त थैं घट मयां, बहु विधि सब विस्तार ।
दादू घट थैं ऊपजे, मैं तैं बरण विचार ॥
निरंजन निराकार है, ओंकार आकार ।
दादू सब रंग रूप सब, सब विधि सब विस्तार ॥
आदि सबद ओंकार है, बोलै सब घट मांहिं ।
दादू माया बिस्तरी, परम तत्त यहु नाहिं ॥
पैदा किया घाट घड़ि, आपै आप उपाइ ।
हिकमत हुनर कारीगरी, दादू लखी न जाइ ॥[२]

---

१- संत सुधासार--जपुजी २
२- दादू दयाल की बानी --भाग१, सबद को अंग ८,९,११,१२,१३।

सन्त सुन्दरदास ने 'सांख्य दर्शन' से प्रभाव ग्रहण कर सृष्टि-तत्व का निरूपण निम्न रूप में किया है--

'ब्रह्म से पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई ।
प्रकृति तें महत्तत्व पुनि अहंकार है ।।
अहंकार हूं तें तीन गुण सत,रज,तम ।
तमहूं तें महाभूत विषय पसार है ।।
रजहूं तें इन्द्रिय दस पृथक्-पृथक् भई ।
सतहूं तें मन आदि देवता विचार है ।।
ऐसे अनुक्रम करि शिष्य सूं कहत गुरु ।
सुन्दर सकल यह मिथ्या संसार है ।।'[१]

सुन्दरदास जी ने जगत् का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व न स्वीकार करते हुए उसे ब्रह्म से ही उद्भूत माना है--

'सुन्दर जानै ब्रह्म में ब्रह्म जगत् है नाहिं ।'

तथा--

'सुन्दर कहत यह एकै अखंड ब्रह्म ।
ताही को पलटि कै जगत् नाम धर्यो है ।।'[२]

इस प्रकार प्राय: सभी सन्त कवियों ने जगत् को मिथ्या, क्षण भंगुर ,सेमर के फूल के सदृश आकर्षक किन्तु तत्व-विहीन,दिन की हाट तथा चार दिनों की चांदनी कहा है । यह दिखलाई पड़ने वाला नाम रूपात्मक जगत् मिथ्या है । यह ब्रह्म से ही उद्भूत होकर पुन: ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है । ब्रह्म से इतर इसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है ।

---

१- सुन्दर विलास--सांख्य ज्ञान को अंग ७
२- संत सुधार -- स्वामी सुन्दरदास,पृ०६३४